चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के सौ साल–10

साम्राज्यवाद की अगली कतार में

– डॉ० राम कवीन्द्र

अपनी नयी भूमिका में चीन की धमाकेदार उपस्थिति 2010 में दिखाई पड़ी जब हु जिंताओ सरकार के तत्कालीन विदेश मंत्री ने वियतनाम में एशिया प्रशांत देशों के सम्मेलन में कह दिया कि चीन बड़ा देश है, अन्य सभी छोटे देश हैं और यह एक सच्चाई है। अमेरिका और यूरोप के विश्लेषकों ने इस तथ्य को रेखांकित भी किया था। यह बयान अन्य पड़ोसी देशों के लिए चेतावनी था कि चीन भविष्य में उनके साथ एक बड़ी शक्ति की तरह पेश आने वाला है। यह साम्राज्यवादी शक्ति की हैसियत से चीन की भूमिका की खुली अभिव्यक्ति थी।

वर्ष 2008–09 अमेरिका,यूरोप और उनपर निर्भर अन्य देशों के लिए अत्यंत संकट का समय था यानी साम्राज्यवादी व्यवस्था के लिए यह संकट का समय था। इस महामंदी में विश्व व्यापार में 15% गिरावट आयी थी, 2007–10 के बीच बेरोजगारी में 3% की वृद्धि हुई और लगभग तीन करोड़ लोग नौकरी खोकर सड़क पर आ गये थे, लेकिन चीन की उदीयमान अर्थव्यवस्था के लिए वह सुनहरा अवसर था, क्योंकि वह न सिर्फ उस महामंदी की चपेट से बाहर था, बल्कि उनका मुक्तिदाता बनकर सामने आ रहा था।

मंदी की इस अवधि में चीन ने इंफ्रास्ट्रक्चर, गृहनिर्माण, कर में छूट, लोगों की आय में बढ़ोतरी, जन स्वास्थ्य व शिक्षा का विस्तार, पर्यावरण, यातायात इत्यादि जैसी विकास और जनकल्याण की योजनाओं पर लगभग 586 अरब डॉलर की राशि खर्च की थी। चीन की सरकार ने इस प्रोत्साहन योजना की घोषणा नवंबर 09, 2008 को की थी। इन मदों पर खर्च का मकसद बिल्कुल साफ था, जनता की आय में वृद्धि और क्रय क्षमता का विकास व विस्तार। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बैंक की सूद दर में कटौती भी की गयी। इस प्रकार जो चीन प्रारम्भिक दौर में विश्व उत्पादन का हब बना हुआ था और सारी दुनिया को उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति करता था, वही इस मंदी के दौर में विश्व अर्थव्यवस्था का बड़ा उपभोक्ता और तारनहार बन गया था। साम्राज्यवादी जगत के कई नेताओं ने चीन के इन कदमों की प्रशंसा भी की थी।

चीन की अर्थव्यवस्था पर इन कदमों का तात्कालिक प्रभाव नकारात्मक पड़ा। उसका विकास दर 2008 में घटकर 6% रह गयी, लेकिन 2009 के मध्य तक फिर उछलकर 10% पर पहुँच गयी। हालांकि कई अर्थशास्त्रियों का मानना है कि चीनी अर्थव्यवस्था के वर्तमान संकट की नींव उसी प्रोत्साहन पैकेज के दौरान पड़ गयी थी। जो भी हो, चीन सरकार के इस पैकेज ने विश्वअर्थव्यवस्था को संकट से उबारने में बड़ी मदद की थी। इसके बाद साम्राज्यवादी व्यवस्था के संचालकों की नजर में चीन का महत्व काफी बढ़ गया था। वह विश्व साम्राज्यवाद के केंद्र में स्थापित हो गया था और उसके बाद ही उसने 'सर झुकाकर इंतजार' (हाईड एंड बाइड) की देंग शियाओ–पिंग की नीति को तिलांजलि देकर विश्व रंगमंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगा था। यह बदलाव साम्राज्यवादी देश के रूप में चीन की भूमिका की शुरुआत थी।

साम्राज्यवाद के केंद्र में

साम्राज्यवादी दुनिया के केंद्र में अपनी जगह सुनिश्चित करने के लिए किसी देश को तीन शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं। सबसे पहले उसके पास धन का अतिरेक हो, वह आत्मनिर्भर औद्योगिक विकास का बुनियादी ढांचा बनाने के लिए शोध और विकास के मद में खर्च करने के लिए तैयार हो तथा सैन्य शक्ति को आधुनिक व मजबूत बनाने में सक्षम हो। 2008 की मंदी के दौरान चीन ने पहली शर्त पूरी कर ली थी।

इस बात की तसदीक बीजिंग ओलिंपिक 2008 की सफलता से की जा सकती है। इस अंतर्राष्ट्रीय आयोजन में चीन ने लगभग 43–44 बिलियन (अरब) डॉलर (4 ट्रिलियन युआन) की राशि खर्च की थी। उस समय इस खर्च की तुलना 2004 के एथेन्स ओलिंपिक्स से की जाने लगी थी। जाहिर है कि उस खेल में एथेन्स ने मात्र 15 बिलियन डॉलर खर्च किया था और उसकी भरपाई करने में उसे बाद के कई वर्ष लगाने पड़े थे। इसके विपरीत इतनी विपुल राशि खर्च करने के बावजूद चीन के पास काफी सरप्लस मौजूद था।

मामले को ज्यादा साफ करने के उद्देश्य से चीन की इस स्थिति की तुलना 1930 के दशक की विश्वव्यापी मंदी में सोवियत संघ की स्थिति से की जा सकती है। सतही तौर पर इतनी समानता तो नजर आती है कि दोनों मंदी से अप्रभावित रहे थे और दोनों देशों की शासक पार्टियों के साथ कम्युनिस्ट नाम का ठप्पा लगा था। लेकिन अन्य मामलों में दोनों में जमीन आसमान का फर्क देखा जा सकता है।

सोवियत संघ संकटग्रस्त साम्राज्यवाद के सरगनाओं का कोप भाजन बन रहा था। कई लोग तो इस संकट के लिए रूसी क्रांति, सोवियत संघ और उससे प्रभावित मजदूर आंदोलन को जिम्मेदार मानने लगे थे। इसके उलट हम देख चुके हैं कि 21वीं सदी की दुनिया के साम्राज्यवादी नायक चीन की सराहना कर रहे थे और उसकी ओर आशाभरी निगाह से देख रहे थे। यह व्यवहार दिन के उजाले की तरह साफ कर देता है कि चीन साम्राज्यवादी दुनिया का विश्वसनीय पार्टनर बन गया था और अमेरिका, यूरोप तथा अन्य देशों के साथ उसका झगड़ा उभरता भी था तो इलाके पर अपने प्रभाव के विस्तार के लिए या लूट के माल में बंटवारे के लिए।

अब हम चीन की बदलती भूमिका को तथ्यों के आईने में देखने की कोशिश करें। अपनी नयी भूमिका में चीन की धमाकेदार उपस्थिति 2010 में दिखाई पड़ी जब हु जिंताओ सरकार के तत्कालीन विदेश मंत्री ने वियतनाम में एशिया प्रशांत देशों के सम्मेलन में कह दिया कि चीन बड़ा देश है, अन्य सभी छोटे देश हैं और यह एक सच्चाई है। अमेरिका और यूरोप के विश्लेषकों ने इस तथ्य को रेखांकित भी किया था। यह बयान अन्य पड़ोसी देशों के लिए चेतावनी था कि चीन भविष्य में उनके साथ एक बड़ी शक्ति की तरह पेश आने वाला है। यह साम्राज्यवादी शक्ति की हैसियत से चीन की भूमिका की खुली अभिव्यक्ति थी।

लेनिन की थीसिस पुराने उपनिवेशवाद की व्याख्या पर आधारित थी, जिसमें साम्राज्यवादी लुटेरों के बीच दुनिया के बंटवारे के लिए विश्वयुद्ध अनिवार्य था। आज क्षेत्रीय युद्ध तो हो रहे हैं और वे होते भी रहेंगे, लेकिन विश्वयुद्ध की अनिवार्यता खत्म हो गयी है। अब तो पूंजीवादी विचारक तक स्वीकार करने लगे हैं कि विश्व पूँजीवाद के खिलाफ बाहरी खतरा (कम्युनिस्ट क्रांति का) नहीं है, लेकिन वह आंतरिक क्षय की बीमारी से ग्रसित है।

चीन की अर्थव्यवस्था की विकास दर में गिरावट की शुरुआत भी इसी दौर में देखी जाने लगी थी। 2010 में उसकी विकास दर 10.61% आँकी गयी थी। उसके बाद लगातार घटते हुए 2019 में 5.95% और 2020 में 2.34% हो गयी थी। यह कोरोना महामारी की अवधि थी जब पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था में गिरावट आयी थी। लेकिन तब अनुमान था कि चीन एक बार फिर छलांग लगाएगा और विश्व अर्थव्यवस्था का इंजन बनेगा। लेकिन ऐसा होता नहीं दिखाई पड़ रहा है। वर्ष 2022 में चीन की विकास दर 3% रही और 2023 में 5.1% का अनुमान लगाया जा रहा है। चीन की अर्थव्यवस्था की यह गिरावट न सिर्फ चीन बल्कि पूरी दुनिया के लिए चिंता का कारण बनी हुई है। अमेरिका के नेतृत्व में जी–7 की अर्थव्यवस्था पूरी तरह उबर भी नहीं पायी थी कि चीन की अर्थव्यवस्था लड़खड़ाने लगी। यह दो ध्रुवीय विश्व के विखंडन के बाद उभरी स्थिति की तस्वीर है।

<u>साम्राज्यवाद नये स्वरूप में</u>

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद बनी नव उपनिवेशवादी व्यवस्था का स्वरूप काफी बदल गया है। प्रत्यक्ष विदेशी शासन का अंत हो गया और अप्रत्यक्ष रूप से यानी किसी देश के दलाल या कठपुतली वर्ग के हाथ में सत्ता सौंपकर साम्राज्यवादी शक्तियां सत्ता चलाती हैं। जैसे ही किसी देश का शासक वर्ग इसमें बाधा डालने लगता है, वैसे ही साम्राज्यवादी देश अलग–अलग या साथ मिलकर उसपर हमला बोल देते हैं। इधर के तीन चार दशकों में ईरान, इराक, अफगानिस्तान और कई अन्य देश इस तरह के संघर्ष के साक्षी बने हैं।

दूसरा बदलाव यह है कि साम्राज्यवादी देशों के बीच दुनिया का क्षेत्रीय विभाजन खत्म हो गया है। मतलब यह कि कई देशों की पूँजी एक ही देश में सहअस्तित्व में रहती है और मुनाफा का बंटवारा पूँजी के अनुसार हो जाता है।

बदलाव का तीसरा पक्ष है कि इन देशों पर सत्ता संचालन की शर्तों के निर्धारण में आम तौर पर खुला बल प्रयोग नहीं होता। यह काम चुपचाप वित्तीय पूँजी के प्रभाव के माध्यम से चलता रहता है। आईएमएफ, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन और यूएनओ जैसे संगठन उत्पीड़ित देशों पर सत्ता की शर्तें तय करने के साधन और साम्राज्यवादी देशों के बीच शक्ति संतुलन के लीवर का काम करते हैं।

इस बदली स्थिति में साम्राज्यवाद के बारे में लेनिन की थीसिस पर गौर करना पड़ेगा। लेनिन की थीसिस पुराने उपनिवेशवाद की व्याख्या पर आधारित थी, जिसमें साम्राज्यवादी लुटेरों के बीच दुनिया के बंटवारे के लिए विश्वयुद्ध अनिवार्य था। आज क्षेत्रीय युद्ध तो हो रहे हैं और वे होते भी रहेंगे, लेकिन विश्वयुद्ध की अनिवार्यता खत्म हो गयी है। अब तो पूंजीवादी विचारक तक स्वीकार करने लगे हैं कि विश्व पूँजीवाद के खिलाफ बाहरी खतरा (कम्युनिस्ट क्रांति का) नहीं है, लेकिन वह आंतरिक क्षय की बीमारी से ग्रसित है। उनकी यह स्वीकृति लेनिन की थीसिस की पुष्टि करती है कि साम्राज्यवाद मरणासन्न अवस्था में लम्बे समय तक रह सकता है और अगर विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन अवसरवाद का शिकार हो जाय तो उसकी यह अवधि बढ़ जा सकती है। हम ऐसे ही दौर से गुजर रहे हैं जहाँ विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन का अवसरवाद मरणासन्न साम्राज्यवाद का अवलम्ब बना हुआ है।

चीन के साम्राज्यवादी विस्तार को इसी परिप्रेक्ष्य में समझना

चाहिए। विश्व व्यापार में चीन की ताकत का मजबूत आधार है कि उसके पास विदेशी मुद्रा का विपुल भंडार है और इसी के बल पर वह अमेरिका तथा यूरोपीय संघ के साथ व्यापार युद्ध में न सिर्फ दृढ़ता से टिका है, बल्कि उन्हें पीछे धकेल रहा है। इस मामले को हम दो उदाहरणों से समझने की कोशिश करेंगे। अफ्रीका और दक्षिणपूर्व एशिया जहाँ पहले यूरोप और अमेरिका का बोलबाला हुआ करता था। इन दोनों क्षेत्रों में आज चीन सबसे बड़ा निवेशक बना हुआ है और इन क्षेत्रों को उसने बाहुबल से नहीं हथियाया है।

आंकड़े बताते हैं कि अफ्रीका में चीन का कुल निवेश 155 अरब डॉलर है और पिछले कुछ वर्षों में इसमें तेजी से वृद्धि हुई है। 2014–22 की अवधि में चीन ने अफ्रीका में 72 अरब डॉलर का निवेश किया है जबकि इसके पूर्व उपनिवेशवादी देशों फ्रांस और ब्रिटेन के निवेश क्रमशः 34 और 18 अरब पर सिमट गये। यह भी ध्यान देने की बात है कि इन देशों का निवेश मुख्यतः अपने–अपने पूर्व उपनिवेशों में है। उसी तरह दक्षिण पूर्व एशिया पर गौर करें। वर्ष 2000 में दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के संगठन एशियान के साथ अमेरिका का व्यापार लगभग 135 अरब डॉलर का था जबकि चीन का मात्र 40 बिलियन डॉलर का। आज यह स्थिति उलट गयी है। यहाँ अमेरिका का व्यापार 300 अरब डॉलर पर रुका हुआ है जबकि चीन छलांग लगाकर 800 अरब डॉलर पर पहुँच गया है। इसी श्रृंखला में यह उल्लेख भी सही होगा कि ब्राजील में भी चीन का व्यापार अमेरिका की तुलना में तीनगुना है। इससे यह तस्वीर उभरने लगती है कि अमेरिका और यूरोप पतनोमुख साम्राज्यवाद हैं और चीन उदीयमान।

लेकिन फिलहाल विश्व अर्थव्यवस्था के इंजन माने जाने वाले उदीयमान साम्राज्यवादी चीन के विदेशी मुद्रा भंडार में इन दिनों कमी आयी है। आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2021 तक चीन का विदेशी मुद्रा भंडार 3.2 ट्रिलियन डॉलर था जो 2022 के घरेलू और विश्वव्यापी संकट से लड़खड़ाने लगा है। अगस्त 2023 में यह आंकड़ा सबसे कम 3.16 ट्रिलियन डॉलर तक पहुंच गया है। लेकिन न्यू यॉर्क स्थित अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के कौंसिल से जुड़े शोधकर्ता ब्रैड सेस्टर का मानना है कि चीन का वास्तविक विदेशी मुद्रा भंडार 6 ट्रिलियन डॉलर के करीब है जिसे वह छुपा रहा है।

चीनी प्रभुत्व का विस्तार

पश्चिमी जगत के कई विशेषज्ञ इस संभावना पर आशंका जाहिर कर रहे है कि बड़ी आर्थिक शक्ति हो जाने के बावजूद क्या चीन दुनिया पर राजनीतिक और सांस्कृतिक वर्चस्व के मामले में अमेरिका का स्थान ले पायेगा? उनका कहना है कि चीन के आर्थिक साम्राज्य का विस्तार भले ही हो रहा है, लेकिन उसके राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों यानी चीनी तानाशाही और कन्फूसियसवाद को विश्वव्यापी स्वीकृति नहीं मिल रही है। लेकिन साम्राज्यवाद से उत्पीड़ित देशों के लिए यह महत्वपूर्ण पक्ष नहीं है क्योंकि अमेरीकी प्रभुत्व वाले कई देशों में पूंजीवादी जनवाद का नाम तक नहीं है और जहाँ है वहां भी अमेरिका या यूरोप के स्तर का नहीं है।

वैसे भी आज की दुनिया में लेनिन की दूसरी बात भी सटीक साबित हो रही है कि **वित्तीय पूँजी स्वतंत्रता नहीं, प्रभुत्व चाहती है।** इसका मतलब है कि वित्तीय पूँजी किसी दूसरे देश में जनतंत्र स्थापित करने नहीं जाती, उसके लिए प्रभुत्व की अवस्था सबसे अनुकूल होती है। नव औपनिवेशिक शोषण–उत्पीड़न के वर्तमान दौर में कई बार जनता की आकांक्षा के सामने उसे जनतंत्र का दिखावा करना पड़ता है, लेकिन जैसे ही वह जनतंत्र वित्तीय पूँजी की सत्ता के खिलाफ आवाज उठाने लगता है, वैसे ही साम्राज्यवादी देशों की भौंहें तन जाती हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की दुनिया में अमेरिका के इतिहास पर गौर करें तो वह उत्पीड़ित देशों में सौ से ज्यादा तख्ता पलट या सैन्य हस्तक्षेप जैसी घटनाओं का अपराधी साबित हो जायेगा। इस वर्ष में दुनिया चिली में अलेन्दे सरकार के तख्ता पलट की पचासवीं साल गिरह मना रही है। इसका अपराधी अमेरिका नहीं तो कौन था! इसलिए चीन के साम्राज्यवादी अवतार से किसी उत्पीड़ित देश की मुक्ति या बेहतरी की उम्मीद वैसा ही दिवास्वप्न है, जैसा अमेरिका से किसी उत्पीड़ित देश में जनतंत्र की स्थापना की उम्मीद। इसलिए वर्तमान दौर में चीन के आर्थिक साम्राज्य का विस्तार उसके राजनीतिक प्रभुत्व की रीढ़ का काम करेगा।

इस बात की झलक दक्षिण अफ्रीका की राजधानी जोहान्सबर्ग में सम्पन्न ब्रिक्स (ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका) संगठन की 15वीं बैठक (22–24 अगस्त) में दिख गयी। पहली बात तो यह दिखी कि इस समूह में छः और देश (अर्जेंटीना, एथिओपिया, मिस्र, ईरान, सऊदी अरब और संयुक्त राज्य अमीरात) जुड़ गये। इस तरह इस समूह में शामिल देशों की संख्या 11 हो गयी है और और लगभग 40 अन्य देश जुड़ने की सूची में शामिल हैं। पश्चिमी देशों के विश्लेषकों की नजर में ब्रिक्स का यह विस्तार अमेरिका और यूरोप के साम्राज्यवादी प्रभुत्व को चुनौती का एक प्रयास है।

ये विचारक भी मानने को बाध्य हैं कि पिछले कुछ दिनों से अमेरिका और उसके सहयोगियों द्वारा अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए डॉलर को हथियार के रूप में प्रयोग में लाया जाने लगा है और यूक्रेन युद्ध में जिस तरह रूस के खिलाफ इसका दुरूपयोग हुआ है, उससे उत्पीड़ित देशों के बीच एक भय का माहौल पैदा हो गया है। ब्रिक्स इस डर से बचने के लिए एक मंच के रूप में उभरता दिख रहा है। इसके पक्ष में स्थिति बन भी रही है क्योंकि कई देशों ने अपनी करेंसी में भुगतान स्वीकार करना शुरू भी कर दिया है। हाल ही में सऊदी अरब और रूस ने भारत से तेल का भुगतान रूपये में लिया और रूस ने तो में चीनी मुद्रा में भुगतान स्वीकार किया।

इससे एक बात तो साफ है कि कई देशों ने अमरीकी दबदबा को चुनौती देना शुरू कर दिया है।

वैसे देशों के लिए उम्मीद की किरण चीन ही है। अपने 15 वर्षों के कार्यकाल में इस संस्था ने दो तरह के आर्थिक संगठनों को जन्म दिया है, न्यू डेवलपमेंट बैंक और कंटिजेंसी रिजर्व फंड। ये दोनों संस्थाएँ क्रमशः वर्ल्ड बैंक और आईएमएफ के तर्ज पर बनायी गयी हैं। उल्लेखनीय है कि आज चीन के नेतृत्व में दो बैंक काम कर रहे हैं, न्यू डेवलपमेंट बैंक या ब्रिक्स डेवलपमेंट बैंक और एशियाई इंफ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट बैंक। दोनों बैंकों की संरचना भिन्न है, लेकिन दोनों में यह बात समान है कि दोनों का नेतृत्व चीन के हाथ में है और दोनों का मुख्यालय क्रमशः शंघाई और बीजिंग में है। ये सारे तथ्य इस क्रूर सच की ओर इशारा करते हैं कि चीन ब्रिक्स गठबंधन की मुख्य ताकत की हैसियत से अमेरिका और यूरोप को चुनौती दे रहा है।

2014 में स्थापित न्यू डेवलपमेंट बैंक की कुल पूँजी 100 अरब डॉलर की है और नवंबर 2020 तक इसने पांच ब्रिक्स देशों में 21 अरब डॉलर की परियोजनाओं को मंजूरी दी है। इसमें 27% परियोजना का कामकाज स्थानीय मुद्रा में होगा, डॉलर में नहीं। यह स्थिति क्या इस बात की ओर इशारा नहीं करती कि डॉलर का दबदबा भले ही बरकरार है, लेकिन उसमें क्षरण भी शुरू हो चुका है! एशिया इंफ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट बैंक की स्थापना ही इसलिए हुई कि एशिया डेवलपमेंट बैंक पर अमेरिका और जापान का वर्चस्व था और चीन का रास्ता साफ नहीं हो रहा था जबकि चीन अपने डॉलर के अतिरेक को दुनिया के बाजार में लगाने को बेचैन था। हालांकि इस बैंक के संस्थापक सदस्यों की संख्या मात्र 21 थी, लेकिन आज उसके 106 सदस्य हैं जो दुनिया के हर महादेश में फैले हैं। इसमें चीन का मत शेयर 26.6% है और दूसरे सबसे प्रभावी देश भारत का 7.6%।

चीन के प्रभाव के विस्तार का तीसरा साधन बेल्ट एंड रोड इनिसिएटिव है। 2013 में स्थापित इस महत्वाकांक्षी योजना के माध्यम से चीन अपने आर्थिक राजनीतिक विस्तार का लक्ष्य तीन तरीकों से हासिल कर सकता है : **नये व्यापार पार्टनर की खोज, निर्यात बाजार का विस्तार, चीनी अर्थव्यवस्था की तरक्की और चीन के अतिरिक्त उत्पादन की खपत।** अब तक उसकी इस योजना के साथ दुनिया के 147 देश जुड़ चुके है और ये देश दुनिया भर के देशों के जीडीपी के 42% के मालिक हैं। चीन–पाकिस्तान आर्थिक कॉरिडोर को इस योजना की सबसे महत्वपूर्ण परियोजना माना जा रहा है। शुरू में इसके खर्च का अनुमान 46 अरब डॉलर था जो 2022 में बढ़कर 65 अरब तक पहुँच गया है। अब तो इसको अफगानिस्तान तक विस्तार की योजना बन चुकी है।

अनुमानतः बेल्ट रोड इनिसिएटिव पर पूरा खर्च लगभग 8 ट्रिलियन डॉलर तक जा सकता है। यह चीन के आर्थिक विस्तार की असल तस्वीर है। इस विस्तार ने निश्चित तौर पर अमेरिका और यूरोप के पूर्ववर्ती आकाओं को परेशान किया है। इसका मुकाबला करने के लिए इन देशों ने 2021 में 'बिल्ड बैक बेटर वर्ल्ड' अभियान की घोषणा की। इस परियोजना को अमल में लाने के लिए वर्ष 2035 तक 40 अरब डॉलर जुटाने का लक्ष्य पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप से जुटाने का लक्ष्य रखा गया है। लेकिन पैसे के अभाव में यह परियोजना चीन का मुकाबला करने में सक्षम नहीं हो पा रही है।

इस आर्थिक कमजोरी ने न सिर्फ आर्थिक विस्तार को चुनौती दी है, बल्कि राजनीतिक प्रभुत्व को भी कमजोर किया है। राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प की ढुलमुल नीतियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चीन को मदद ही पहुंचाई है। ध्यान दीजिये, ह्वाइट हाउस में आने के पहले वे दो बिंदुओं पर चीन के खिलाफ आग उगलते थे। वे 'एक चीन' की नीति का खुला विरोध करते थे और उसे आर्थिक हेराफेरी का दोषी मानते थे। लेकिन उस राजप्रासाद में आने के बाद वे दोनों मुद्दों पर ठंडा पड़ गये। संभवतः यह एक समझौते के तहत हुआ था जिसके अनुसार चीन को उत्तरी कोरिया पर अंकुश लगाना था और बदले में अमेरिका उसको व्यापार में ढील देता।

जो भी हो, कोरिया की गतिविधि तो पूर्ववत जारी रही और चीन दक्षिण पूर्व एशिया पर अपना दबदबा कायम करने में सफल रहा। ट्रम्प प्रशासन के पीछे हटने की नीति के फलस्वरूप फीलिपिन्स और मलेशिया चीन के निकट सट गये हैं। वियतनाम दक्षिण चीन सागर में अपने विवादों को द्विपक्षीय वार्ता से सुलझाने को सहमत हो गया है। कॉम्बोडिया पहले से उसके खेमे में शामिल रहा है। इससे ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है कि दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों के संगठन (एशियान) के निर्णयों पर चीन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। एशियाई इंफ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट बैंक की सहायता इस परिस्थिति को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण कारक बना रहा और आगे भी रहेगा।

सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद के विखंडन के बाद अमेरिका का सपना था कि अब दुनिया पर उसका और उसके सहयोगियों का एकल प्रभुत्व कायम होगा और दुनिया एक ध्रुवीय बनी रहेगी। लेकिन उसे उत्पीड़ित देशों की जनता की ओर से प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। इसका सबसे अच्छा उदाहरण अफगानिस्तान बन गया है जहाँ से दुनिया के एकल महाबली को पीठ दिखाकर भागना पड़ा। इसी बीच चीन का उदय हुआ और रूस भी क्षेत्रीय शक्ति के रूप में सर उठाने लगा। आज साम्राज्यवादी व्यवस्था में अमेरिका और यूरोप की धूरी के सामने चीन और रूस की नयी धूरी के निर्माण से नये शक्ति संतुलन की स्थिति पैदा हो गयी है। ❑